राजपूताना में नारी के धार्मिक एवं सांस्कृतिक पहलू का अध्ययन

सविता बिश्नोई (शोधार्थी) श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राज.)
डॉ. जितेन्द्र यादव (शोध निर्देशक) श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राज.)

वैदिक आर्यों के सरस्वती और दृषद्वती नदियों की घाटियों में बसने के बाद उनका विस्तारक्रमशः राजपूताना के विभिन्न भू–भागों में होता गया। प्रसार के इस क्रम में समृद्ध वैदिक चिन्तन औरप्रक्रियाओं के प्रभाव के उत्तरोत्तर दृढ़ता प्राप्त करने के साथ–साथ स्थानीय और बाह्य संस्कृतियों का भीआर्य संस्कृति में समागम होता गया। जिसके फलस्वरूप हवन और स्तुति आदि ईशा–आराधना प्रकारों काभी प्रचलन हुआ। इस काल से ही राजपूताना के निवासियों का जीवन वेदों में प्रतिपादित अस्तिकतावादीविचारों और धार्मिक चेतना से प्रभावित होने लगा। विभिन्न प्रकार के पक्षों का आयोजन तथा इन्द्र,वरूण, सूर्य, ब्रह्मा एवं सोम की पूजा उपासना का सूत्रपात भी यही से प्रारम्भ होता है यज्ञों को सम्पत्तिएवं जीविका का आधार, मेघा प्रकाशक और प्रयुतादायक मानकर उन्है अत्यधिक महत्त्व दिया जाने लगा।मनुष्यों और देवताओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने में यज्ञों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। देवताओं कीकृपा प्राप्त करने हेतु उन्है यज्ञादि से प्रसन्न किया जाता था। सोमयज्ञ में देवताओं को सोमरस कीआहुति दी जाती थी। दैनिक रूप से सम्पादित किए जाने वाले यज्ञों में पंचमहायज्ञ की बड़ी महिमा थी।सार्वभौम शासकों द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन करना गौरव का विषय माना जाता था। अग्निष्टोम,वाजपेय, पुरूषमेघ आदि यज्ञों की समाज में बड़ी मान्यता थी। यौधेय शासकों की मुद्राओं पर यूप चिह्नोंका मिलना इसी परम्परा का द्योतक है बैराठ से प्राप्त तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के स्वास्तिक चिह्न भीयज्ञों के ही बोधक है कोटा के कुछ यज्ञ स्तम्भों से त्रिरात्र–यज्ञ के प्रचलन का बोध होता है मेवाड केबप्पा रावल, क्षेत्रसिंह, राणा कुम्भा और राजसिंह भी वैदिक यज्ञों का सम्पादन किया करते थे। जोधपुर केमहाराजा अभयसिंह ने भी वैदिक धर्म एवं यज्ञों की परम्पराओं को निभाया। जयपुर के सवाई ने अश्वमेघतथा अन्य प्रकार के यज्ञों के सम्पादन द्वारा वैदिक परम्परा को जीवन्त बनाए रखा। इन कतिपयधार्मिक याज्ञिक क्रियाओं में उनकी रानियों की उपस्थिति न केवल अनिवार्य की बल्कि वे बड़े उत्साह सेइनमें भाग लिया करती थी।

आलोच्यकाल में राजपूताना की नारियों की गरिमामय उपस्थिति के साथ–साथ कुछ सामाजिकबर्जनाओं के कारण नारियों के जीवन पर कुछ नकारात्मक प्रभाव भी दृष्टिगोचर होते है। जिनमें सतीप्रथाएवं जौहर जैसी प्रथाएं शामिल की जा सकती है यद्यपि इन प्रकाओं में जहां एक और त्याग एवं शौर्य कीभावना प्रतीत होती है तो दूसरी तरफ सामाजिक विवशता होना भी नकारा नहीं जा सकता।

जहाँ हम मृत कृत्य का जिक्र करते है वहाँ सती प्रथा का उल्लेख आवश्यक है, क्योंकिराजपूताना की रस्मों में इसका प्रमुख स्थान है वैसे तो यह रस्म अमानवीय है, परन्तु यहाँ के स्त्रीसमाज में उसका काफी प्रचलन था। पुराणों तथा धर्मनिबन्धों में इस कुस्सित प्रथा का उल्लेख आता हैजहाँ मृत पति के साथ उसकी पत्नी स्वर्ग–प्राप्ति की इच्छा से जीवित जल जाती है इस गलत एवं भ्रान्तभावनायुक्त प्रक्रिया को इसीलिए ''सहगमन'' कहते है। शिलालेखों तथा काव्य ग्रन्थों में अपने पति मेंपूर्ण निष्ठा व भक्ति रखने वाली पत्नी के लिए भी सती शब्द का प्रयोग किया गया है इसी प्रकार पतिके साथ जलने वाली महिला के कृत्य को ''सत्यव्रत'' बतलाया है। उत्तर प्राचीनकालीन व मध्यकालीन अभिलेखों व साहित्य ग्रन्थों में सती कतिपय उल्लेख मिलतेहै। हूणों के विरूद्ध युद्ध में मरने वाले सेनापति गोपराज की पत्नी 510 ई. में सती हुई थी। घटियालाअभिलेख (810 ई.) से प्रमाणित है कि राजपूत सामंत राणुक की प्त्नी संपलदेवी ने सहगमन किया।राजपूताना के सुप्रसिद्ध राजाओं, जैसे प्रताप, मालदेव, बीका, जसवन्तसिंह, मुकन्दसिंह, भीमसिंह,जयसिंह आदि के मरने पर कई रानियाँ, उप–पत्नियाँ, खवासने और दासियाँ सती हुई थीं। राजाओं केविशिष्ट कर्मचारियों में भी यह प्रथा चल पड़ी थी। महाराणा प्रताप के आश्रित ताराचन्द की चार स्त्रियाँ1591 में उसके साथ सती हुई। 1680 के मेड़ता के युद्ध के बाद और चित्तौड़ के तीन शाकों के अवसरपर साधारण परिवार की हजारों महिलाओं ने सत्यव्रत का पालन किया था जो स्थानीय सती स्मारकस्तम्भों से प्रमाणित है।

प्रारम्भ में जब तक ''सहगमन'' का धार्मिक महत्त्व था, विकल्प के रूप में इस प्रथा का प्रचलनरहा। परन्तु जब युद्ध की सभावनायें बढ़ने लगीं, त्यों ही पतियों के मरने पर युद्धोत्तर यातनाओं से बचनेके लिए महिलाओं के लिए यही एकमात्र विकल्प बचा था कि वे अपने मृत पति के साथ सती हो जाये।आक्रमणों के अवसरों पर बन्दी बनाये जाने, जलील होने या धर्म परिवर्तन की सम्भावना के भय से भीइस भयावह परिस्थिति का अनुकरण अनेक स्त्रियाँ करती थीं। धीरे–धीरे स्वार्थी तथा प्रतिष्ठा सम्बन्धीतत्त्वों ने भी इस जघन्य प्रथा को बढ़ावा दिया।

 Copyright @ 2024 Author

राज–परिवार की महिलायें घोड़े या पालकी में बैठकर सिर पर पगड़ी धारण कर और हाथ मेंखंजर लेकर महलों के मुख्य द्वारों तथा नगर के प्रमुख द्वारों तथा नगर के प्रमुख मार्गों से अपने पतियोंकी सवारी के साथ जाती थीं। मार्ग में अपने आभूषणों को उतार कर बाँटती भी जाती थीं। अजितोदय मेंवर्णित है कि जब जसवन्तसिंह की मृत्यु की सूचना जोधपुर पहुँची तो उनकी पत्नियों ने स्नान करआभूषण और फूलों से अपने को सजाया और पालकी में बैठकर गाजे–बाजे व भजन मण्डलियों कीअगुवाई में मण्डोर के राजकीय श्मशान की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर अपने पति की पगड़ियोंको गोद में लेकर चिता में प्रविष्ट कर वे भस्म हो गई।

एक ओर रूढ़िवादी तत्त्वों ने इस प्रथा का समर्थन किया है तो दूसरी ओर कुछ शास्त्रकारों,भाष्यकारों और जैन लेखकों ने इस कृत्य को पाप और आत्महत्या की संज्ञा दी है भाग्यवश राजाराममोहनराय तथा बैंटिक के स्तुत्य प्रयास से इस प्रथा का देश में और राजपूताना में अन्त हो गया। अबभावावेश में ही सती होने के यदा–कदा समाचार मिलते है।

सती की भाँति एक और प्रथा थी जिसे जौहर कहते है। इस प्रथा के अनुसार सामूहिक रूप सेस्त्रियाँ उस समय अपने को अग्नि में भस्म कर देती थीं, जब शत्रुओं के आक्रमण के समय उनके पतियोंके युद्ध से पुनः लौटने की कोई आशा नहीं रहती थी और सामाजिक संस्थाएँ और संस्कृति न उनकादुर्ग दुश्मनों के हाथ से बचना सम्भव ही था। ऐसे अवसरों पर स्त्रियाँ, बच्चे व बूढ़े अपने आपको तथादुर्ग की सम्पूर्ण सम्पत्ति का अग्नि में डाल कर भस्म हो जाते थे। ऐसा करने का अभिप्राय धर्म एवंआत्मसम्मान की रक्षा था जिससे शत्रुओं के द्वारा बंदी बनाये जाने की अवस्था में उन्है अनैतिक एवंअधर्म आचरण न करना पड़े। ऐसे कार्य से वे देश एवं स्वजनों के प्रति भक्ति अनुप्राणित करते थे औरयुद्ध में लड़ने वाले वीर मातृभूमि की रक्षा के लिए शोर्य और बलिदान की भावना से निश्चिन्त शत्रुओं परटूट पड़ते थे।

समसामयिक लेखकों ने जौहर के सम्बन्ध में अच्छा विवरण दिया है तारीखे–अलाई का लेखकलिखता है कि जब अलाउद्दीन खिलजी ने 1301 ई. में रणथम्भौर पर आक्रमण किया और किले कोबचाने का कोई मार्ग न बचा तो इधर रणथम्भौर का राय अपने वीर साथियों के साथ किले के फाटक कोखोल शत्रु दल पर टूट पड़ा और वहाँ की वीरांगनायें इसके पूर्व ही अग्नि में कूद कर स्वाहा हो गई।जालौर के आक्रमण के समय वहाँ के जौहर का पद्मनाभ ने भी रोमांचकारी वर्णन किया है, यह बतलातेहुए कि रमणियों की साहसी आहूति ने योद्धाओं को निश्चिन्त कर दिय और वे बड़ी दिलेरी से शत्रुदल परटूट पड़े। 1503 ई., 1535 ई. तथा 1568 ई. के चित्तौड़ के तीनों शाकों के अवसर पर पद्मिनी, कमेंती तथापत्ता व कल्ला की पत्नियों के जौहर जगत् प्रसिद्ध है। अकबर के समय का जौहर तो इतना भीषण थाकि चित्तौड़ दुर्ग का प्रत्येक घर व हवेली जौहर स्थल बन गया। परिस्थितिवश ये प्रथाएँ चल पड़ीं, किन्तुसती प्रथा या जौहर की प्रथा को मानवीय कसौटी पर खरा प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

लोकोत्सव :

सामाजिक जीवन और उससे सम्बन्धित संस्थाओं में लोकोत्सवों का महत्त्वपूर्ण स्थान है स्थानीयसंस्कृति को अभिव्यक्ति लोकोत्सवों में स्पष्ट देखी जा सकती है क्योंकि उनके साथ प्राचीन परम्पराएँतथा विचारधाराएँ जुड़ी रहती है। ये विचारधाराएँ और परम्पराएँ धार्मिक, ऐतिहासिक अथवा सामाजिक होतीहै। जब–जब लोकोत्सवों का आयोजन होता है तो देष या प्रान्त के सांस्कृतिक पहलू के एक स्वरूप कीअभिव्यक्ति होती है जिसमें प्रत्येक तबके का व्यक्ति सम्मिलित ढंग से बड़े उत्साह से भाग लेता है इनउत्सवों, ऋतुओं एवं विशेष अवसरों को ऐसा संयोजित किया जाता है कि जन–भावना में नैसर्गिकता दीखपड़ती है राजपूताना में प्राकृतिक वातावरण में विभिन्नता होने से लोकोत्सवों का भी एक विचित्र स्वरूपबन गया है अलग–अलग मौसम में अलग–अलग स्थानों में वेश–भूषा, नाच–गान या प्रदर्शन अपनीविशेषताओं को लेकर इस तरह रचे जाते है कि लोकोत्सवों में नये जीवन का संचार हो जाता है स्त्रियाँमहावरों और माँडनों या व्रतों द्वारा इन उत्सवों में एक नई उमंग भर देती है इन अवसरों में गाये जानेवाले लोकगीतों अथवा कही जाने वाली लोकवार्ताओं में धार्मिक निष्ठा तथा ऐतिहासिक तथ्य छिपे पड़े हैजो राजपूतानी संस्कृति के द्योतक है। अब हम कुछ लोकोत्सवों का वर्णन करते है जो अपनी स्थानीय विशेषताओं को व्यक्त करते है।

गणगौर :

राजपूताना के सभी त्यौहारों में, जो सामाजिक और धार्मिक है, गणगौर का उत्सव बड़े महत्त्व काहै राजपूतानी सधवा स्त्रियाँ एवं कुमारियाँ इसको असीम श्रद्धा और निष्ठा से मनाती है। इस कामना केसाथ कि उनके पति दीर्घायु हों, सधवाओं का सुहाग चिरकालीन रहे और कुमारिकाओं को अच्छे वर कीप्राप्ति हो। यह त्यौहार एक

 Copyright @ 2024 Author

व्रत का भी अंग माना जाता है स्त्रियाँ 15 दिन तक व्रती रहकर शिव–पार्वतीका पूजन करती है। व्रत होलिका–दहन से आरम्भ होकर चैत्र शुक्ला एकम और कहीं–कहीं तृतीया तकसमाप्त होता है इस अवसर पर होली की राख के पिण्ड भी बनाये जाते है और यव के अंकुरों के साथइनका पूजन होता है कुमारियाँ बाग–बगीचों से फूलों को कलश में सजाकर गीत गाती हुई अपने घर लेजाती है। इस अवसर पर चूड़ा और चूँदड़ी की अक्षयता की कामना की जाती है और उसी के उपलक्ष मेंविविध नृत्यों का आयोजन और गीतों का गायन किया जाता है।

गणगौर का त्यौहार शिव–पार्वती के रूप में ईसरजी और ईसरजी के पूजन की प्रतिमाओं के द्वारामनाया जाता है ऐसी मान्यता है कि इस उत्सव का आरम्भ पार्वती के गौने या अपने पिता के घर पुनःलौटने और उसकी सखियों द्वारा स्वागत गान को लेकर हुआ था। इसी स्मृति में आज भी गणगौर कीकाष्ठ की प्रतिमाओं को सजा कर मिट्टी की प्रतिमाओं के साथ स्त्रियाँ किसी जलाशय पर जाती है औरनृत्य और लोकगीतों की ध्वनि से मिट्टी की प्रतिमाओं का विसर्जन कर काष्ठ प्रतिमाओं को पुनः लाकरस्थानापन्न करती है। हकीकत बहियों से प्रमाणित है कि इस उत्सव को जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, कोटाआदि राज्यों में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था जिसमें स्वयं राज्यों के राजा तथा कर्मचारी सवारी केसाथ सम्मिलित होते थे। कोटा में तो अनेक जातियों की स्त्रियाँ, जनमें कूँजड़ियाँ, लखारन, भड़भूँजा आदिभी सम्मिलित होती थीं और राजप्रासाद के आँगन में आकर नृत्य करती थीं। उदयपुर में मनाये जाने वालेउत्सव में गणगौर की सवारी का कर्नल टॉड ने बड़ा रोचक वर्णन किया है, जहाँ अट्टालिकाओं में बैठकरसभी जातियों की स्त्रियाँ, बच्चे और पुरूष रंग–रंगीले आभूषणों से सुसज्जित हो गणगौर की सवारी कोदेखते थे। यह सवारी तोप के धमाके से और नगाड़े की आवाज से राजप्रासाद से आरम्भ होकर पिछौलातालाब के गणगौर घाट तक बड़ी धूम–धाम से पहुँचती थी और नौका विहार तथा आतिशबाजी के प्रदर्शनके बाद समाप्त होती थी।

यह त्यौहार आदिवासियों में भी बड़े उत्साह से मनाया जाता है, क्योंकि आर्यदेव शिव औरआर्यदेवी पार्वती को द्रविड़ों ने भी अपना लिया था। इनके लोकगीतों में इन देव और देवी को जनसाधारणकी तरह लोक जीवन बिताते चित्रित किया गया है, जो लोक–व्यवहार और देव जीवन में एकत्व कीभावना प्रकट करते है। आर्य और द्रविड़ संस्कृति के समन्वय का यह त्यौहार एक अच्छा उदाहरण है

तीज :

तीज का त्यौहार ऋतु प्रधान होते हुए भावुकता से अधिक सम्बन्धित है हरियाली के वातावरण मेंइसको मनाया जाता है, जब प्रकृति पूरी हरियाली से ओत–प्रोत हो जाती है तथा नदी–नाले बहने लगते हैऔर सरोवर पूरे भर जाते है। राजपूताना में जहाँ वर्षा कम होती है, वहाँ इस उत्सव को अधिक उल्लाससे मनाया जाता है, क्योंकि शुष्क भूमि में थोड़ी भी आभा हृदयाकर्षक लगती है आसमान में काली घटाजोड़कर इसका नाम भी लोगों ने काजली तीज कर दिया है श्रावण शुक्ला तृतीया को बालिकाएँ एवंनवविवाहित वधुएँ इस त्यौहार को मनाती है। एक दिन पूर्व वे हाथों और पाँवों में मेहन्दी लगाती है औरदूसरे दिन वे अपने पिता के घर जाती है जहाँ उन्हे नई पोशाकें दी जाती है और पकवान के भोजन सेतृप्त किया जाता है लोकगीतों के अध्ययन से पता चलता है कि नवविवाहिता पत्नी अपने दूर देश गयेपति से मिलने में विरहातुर होकर तीज की रात को तड़प–तड़प कर गुजारती है ऐसा भी वर्णन मिलता हैकि पति भी अनी पत्नि से मिलने के लिए नदी–नालों को पार कर किसी भी प्रकार से अपने घर लौटताहै।

इस त्यौहार के अवसर पर राजपूताना में स्थान–स्थान पर झूले लगाते है और सरोवरों के तटांपर मेलों का आयोजन होता है यहाँ प्रेमिकाएँ अपने प्रेमिकों को देखकर श्रृंगार रस–प्रधान गीतों को गातीहै और नृत्य करती है। इस त्यौहार के आस–पास खेतों में बुवाई भी शुरू होती है लोकगीतों में इसीलिएइस अवसर को सुखद, सुरंगी और सुहावना गाया जाता है मोठ, बाजरा, फली आदि की बुवाई के लिएकृषक इसी उत्सव पर वर्षा की महिमा व्यक्त करते है। प्रकृति तथा हृदयगत भावना के तारतम्य कीअभिव्यक्ति तीज के उत्सव में निहित है।

होली :

होली का त्यौहार फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को सम्पूर्ण भारत में बड़े उल्लास से मनाया जाता हैपौराणिक कथा के अनुसार हिरण्यकश्यप ने नृशंस शासन का इस दिन अन्त हुआ था और प्रहलाद कीभक्ति की विजय हुई थी। इसी घटना की स्मृति में इसे मनाया जाता है इसके मनाने का समय भी बड़ाउपयुक्त है ऋतु परिवर्तन और रबी की फसल की कटाई से इस अवसर पर जनमानस उल्लास से प्रेरितहोकर मनोरंजन के लिए उत्साही हो जाती है

 Copyright @ 2024 Author

इस अवसर पर होली की पूजा की जाती है गोबर के कंडों को इकट्ठा किया जाता है और कुछकंडों की मालाएँ होली दहर के लिए समर्पित की जाती है। होली की परिक्रमा करना और उसकी अग्निसे भोजना पकाना शुभ एवं धार्मिक माना जाता है नृत्य, गान और गुलाल से त्यौहार के महत्त्व कोप्रदर्शित किया जाता है इसी अवसर पर सभी तबके के व्यक्ति एक–दूसरे से मिलते है। ऐसा प्रतीत होताहै कि समाज में ऐक्य और समानता व्यापक और वास्तविक है उदयपुर, जोधपुर आदि राज्यों में तो वहाँके नरेश आम जनता के साथ होली खेलकर आनन्द का अनुभव करते थे। अग्नि पूजन, परिक्रमा, गोबरकी माला का समर्पण, नृत्य, गायन आदि होली के विविध प्रकरण इसके सांस्कृतिक पक्ष है।

दशहरा :

यह त्यौहार आश्विन शुक्ला दशमी को पड़ता है वैसे तो भारत के अन्य भागों में भी इसे मनायाजाता है, परन्तु राजपूताना में शौर्य की प्रमुखता के कारण इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया हैऐसी मान्यता है कि इसी दिन राम ने रावण पर विजय पाई थी और इसीलिए इसका दूसरा नामविजया–दशमी रखा गया। यह क्षत्रियों का त्यौहार है जिसे दुर्गा–स्थापना व दुर्गाष्टमी और नवरात्रि से भीजोड़ दिया गया है प्रत्येक अवसर पर शक्ति की पूजा होती है और शक्ति का प्रदर्शन होता है सूअर काशिकार, भैंसों की दौड़, बलिदान, शस्त्र पूजन, हवन, खेजड़ी पूजन, दरबारों का लगाना, भेंट समर्पण,टीका–दौड़ आदि कार्यक्रमों का विधिवत् आयोजन शक्ति प्रदर्शन के प्रतीक है जो राजपूतानी संस्कृति केविशिष्ट अंग है।

दीपावली :

भारतीय संस्कृति में ऐसे भी पर्व है जिनमें धर्म की परिधि में विज्ञान और लोक–जीवन की पूरीझाँकी निहित है इन पर्वों में दीपावली सर्वोपरि है इस अवसर पर न केवल दीपकों की पंक्ति से नगर,हाट, मन्दिर तथा राजप्रासाद ही सजाये जाते है, अपितु गरीब से गरीब की झौंपड़ी में भी दीपक जलायेजाते है। इसे राजा और साहूकार से लेकर कृषक, ग्वाला और मजदूर तक बड़े प्रेम और उत्साह से मनातेहै। घर–घर पाँच दिन तक लक्ष्मी, सरस्वती और विष्णु तथा यमुना की आराधना की जाती है भाई–बहिनोंऔर ग्वालों के त्यौहारों को भी इसमें सम्मिलित कर लोक–जीवन का एक तारतम्य स्थापित कर दियागया है इसी के अन्तर्गत अन्नकूट का महोत्सव और गोवर्धन–पूजन की व्यवस्था में भारतीय समृद्धि तथागौपालन एवं अन्न उत्पन्न करने के खाद (गोबर) को प्रधानता दी गई है राजपूताना में नाथद्वारा,कॉकरोली और कोटा में अन्नकूट पुष्टिमार्गीय विधि से मनाया जाता है कार्तिक त्रयोदशी से लेकर कार्तिकशुक्ला द्वितीया तक दीपावली के माध्यम से विविध उत्सवों का सामंजस्य अपने आप में अनूठा है।

अन्य उत्सव :

ऋतु तथा धर्म परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन में अन्य कई उत्सव है जिनमें अक्षय तृतीया,रक्षाबन्धन, जन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी, शरद पूर्णिमा, बसंत पंचमी, नाग पंचमी आदि प्रमुख है। इन सभीउत्सवों में धर्मनिष्ठा और लोक जीवन की विविधता को इस प्रकार समावेशित किया गया है कि भारतीयसंस्कृति का निराकार स्वरूप साकार–सा दिखाई देता है सभी लाभप्रद प्रक्रियाओं को धार्मिक वृत्तियों केसाथ जोड़कर जीवन की उपयोगिता को सार्थक बना दिया गया है राजपूताना में जहाँ निष्ठा और सरसजीवन का अधिक महत्त्व है, ये सभी त्यौहार यहाँ सजीव से बने हुए है और ऐसा लगता है किसांस्कृतिक दृष्टि से इस युग में अब भी परम्परा की मान्यता विद्यमान है।

इन पर्वों के अतिरिक्त जैन सम्प्रदाय से सम्बन्धित भी अनेक उत्सव है जिन्है राजपूताना में बड़ीश्रद्धा के साथ मनाया जाता है जैनों का सबसे पवित्र और महत्त्वपूर्ण उत्सव पर्यूषण है जो भाद्रपद मेंमनाया जाता है श्रावकगण इस अवसर पर मन्दिर जाते है, पूजन, अर्चन, स्तवन, कीर्तन, व्रत, उपवासआदि प्रक्रियाओं द्वारा आत्म–शुद्धि, संयम एवं नियम का पालन करते है। इस उत्सव का अन्तिम दिनसंवत्सरी कहलाता है इसके दूसरे दिन, अर्थात् आश्विन कृष्णा एकम को क्षमापणी एवं मनाया जाता हैइस दिन सभी श्रावक एक जगल इकट्ठे होकर एक–दूसरे से क्षमा याचना करते है। दूर रहने वालों कोपत्र द्वारा दोषों को भूल जाने की प्रार्थना की जाती है जिससे प्रतिवर्ष पारस्परिक द्वेषों का अन्त होता रहेऔर सौहार्द्र का वातावरण बने। इस पर्व में नैतिक आचरण और चिन्तन की प्रधानता है जो भारतीयसंस्कृति का मूल मंत्र है।

राजपूताना में मुसलमानों की संख्या संतोषजनक है और यहाँ का वातावरण इतना सौहार्द्रपूर्ण हैकि जब से ये लोग यहाँ आकर बसे गये तब से उन्है अपने धार्मिक एवं सांस्कृतिक त्यौहारों को मनानेकी पूर्ण स्वतन्त्रता रही है सबसे बड़ी विशेषता इस सम्बन्ध में यह है कि इनके कई त्यौहारों में हिन्दू,जैन व ईसाई समाज का सहयोग

 Copyright @ 2024 Author

रहता है यहाँ तक कि राज्य की ओर से उनको त्यौहार मनाने के लिएप्रोत्साहित किया जाता रहा है मन्दिरों की भाँति मस्जिदों को अनुदान समर्पण और पण्डितों की भाँतिकाजियों को पदों तथा भेंटों से सम्मानित किया जाता रहा है इन सभी अवसरों में राजपूताना काअधिकांश जनसमूह भाई–चारे का व्यवहार प्रदर्शित करता रहा है और इसमें जातिवाद का दोष नहीं देखागया है ऐसा लगता है कि ये त्यौहार भारतीय संस्कृति के अंग से हो गये है।
मुसलमानों के महान् पर्वों में ईदुलजुहा, जिसे बकरा ईद भी कहते है, जिल्कार की दसवीं तारीखको अब्राहम द्वारा अपने प्रिय पुत्र इस्माइल की कुर्बानी की स्मृति में मनाया जाता है इस अवसर पर जबचार हटाई गई ता बजाय अपने पुत्र के भेड़ कटी मिली। इसी घटना को लेकर अब उसी के प्रतीक केरूप में बकरे, भेड़ आदि की कुरबानी की जाती है और उसके माँस को वितरित किया जाता है तथापारस्परिक प्रेम को बढ़ाया जाता है मुहर्रम भी एक शोक मनाने का मुसलमानों का त्यौहार है जबकि वेदस दिन तक उपवास रखते है और अन्तिम दिन मुहम्मद साहब के नाती हुसैन इमाम के बलिदान केउपलक्ष में ताजिये निकालते है और उन्है किसी जलाशय में दफना कर लौटते है तथा गरीबों को खैरातबाँटकर उपवास तोड़ते है। शबेरात का त्यौहार बड़ी खुशी का होता है, क्योंकि ऐसा विश्वास है कि उसदिन सभी मानवों के कर्मों की जाँच होती है और उनके कर्मों के अनुसार उनके भाग्य का निर्धारण कियाजाता है मुहम्मद साहब के पवित्र जन्म एवं मरण की स्मृति में बारावफात का त्यौहार मुस्लिम समाज बड़ीभक्ति से मनाता है रमजान के व्रत की समाप्ति का दिन इदुल–फितर कहलाता है जिस दिन सर्वत्रआपसी मिलन और नई पोशाक में मुस्लिम समाज दिखाई देता है।
ईसाई पर्वों में पहली जनवरी, ईस्टर, गुड फ्राइडे, क्रिसमस–डे आदि है जिन्है लोग गिरजाघरों एवंईसाईसों के निवास स्थान में बड़े उल्लास से मनाते है। किसी भी धर्म का अनुयायी क्यों न हो; मित्रताऔर परिचय के नाते वह अपने सभी ईसाई मित्रों से इन त्यौहारों पर मिलता है, साथ बैठता है और साथखाता है भेदभाव को भूलकर मिलना–जुलना ही तो संस्कृति का उज्जवल पक्ष है।

परिवार और नारी :

पारिवारिक जीवन स्वयं एक संस्था है जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त दैनिक कार्य संस्कार, उत्सव,व्रत, यज्ञ, विवाह, मिलना–जुलना, शोक, हर्ष आदि घटनाएँ परिवार के सदस्यों द्वारा सम्पादित होती हैऔर उन्है सामाजिक एवं शास्त्रीय विधि–विधान के माध्यम से पूरा किया जाता है ये परिवार एक पीढ़ीकी परम्परा न होकर अनगिनत पीढ़ियों के सोपान है। इन सदियों पुराने परिवारों में माँ, बाप, भाई,भगिनी, पुत्र, पुत्रियों, दादा व दादियों के क्रम में व्यक्तियों के रूप में बदलते रहते है, परन्तु कुटुम्बप्रणाली की संस्था अपने आप में निरन्तर है इसी तरह परिवार से समाज और समाज से राज्य और राज्यसे राष्ट्र आदि घटकों का निर्माण होता है तथा उनका सम्बन्ध एक–दूसरे पर अन्योन्याश्रित है औरअविभाज्य है पारिवारिक सम्बन्ध में सगोत्रता और रक्त इतने घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए है कि उनमें प्रेम,ऐक्य, सहयोग आदि की भावना नैसर्गिक होती है
परिवार की व्यापकता और भावनात्मक स्थिति की सम्भावना का सूत्र विवाह है और विवाह काआधार नारी है पुरूष और नारी के संयोग से पारिवारिक परिधियाँ विस्तारित होती रही है। प्राचीनकाल सेराजपूताना में पारिवारिक जीवन के प्रतीक मिलते है जो कालीबंगा, आहड़, बागोर, बागड़ आदि स्थानों केउत्खनन से स्पष्ट है पूर्व मध्यकालीन स्थापत्य के उत्कीर्णों के नमूनों में अनेक पारिवारिक जीवन केदृश्य सुरक्षित है। शिलालेखों में भी कौटुम्बिक जीवन या स्थानीय साहित्य में कुटुम्ब प्रणाली के उल्लेखोंकी कमी नहीं है आज भी सामाजिक जीवन का आधार परिवार है जो सर्वविदित है
इस प्रकार के पारिवारिक जीवन के संदर्भ में बारीकी से यदि हम देखें तो हम पायेंगे किकौटुम्बिक जीवन की सृजनात्मक प्रवृत्ति को जीवित रखने का श्रेय नारी को है स्नेह, प्रेम,वात्सल्य–भाव, आकर्षण, गुरूत्व सेवा, लालन–पालन, धव्र संवहन आदि गुणों का समावेश स्त्री स्वभाव मेंनिहित है, अतः धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान सर्वदा महत्त्वपूर्ण रहा है। लोक–संस्कृति, जिसको जीवन्त संस्कृति कहना चाहिए; स्त्रियों द्वारा ही संचालित एवं परिवर्द्धित होती हैइन विभिन्न उत्सवों, संस्कारों, मेलों आदि के रचनात्मक स्वरूप को सजाने का काम नारियों ने ही कियाहै कोई भी उत्सव या त्यौहार गायन–नृत्य के बिना सम्पादित नहीं होता। राजपूताना में विशेष रूप सेलोग–गीतों की शब्दावली में नारी की महत्ता के साथ प्रकृति एवं उत्सव की घटनाओं को ऐसा संजोयागया है कि जिससे नारी कीा केन्द्रीयता स्पष्ट हो जाती है इतना ही नहीं, अभिजातवर्ग के सांस्कृतिककार्यक्रम साधारण से साधारण स्तर के स्त्री–समाज बिना सम्पादित नहीं हो सकते। यहाँ ऊँच–नीच केभाव का पूर्ण अभाव यह सिद्ध करता है कि नारी की उपस्थिति सभी पर्व और उत्सवों की धुरी है और उसेविच्छिन्न नहीं किया जा सकता। एक दमामी के या नायिका के परिवार से समृद्ध परिवार का महोत्सवआरम्भ होता है और उसका समापन भी उसी परिवार की देखरेख में होता है जो राजपूताना की महतीविशेषता है।

 Copyright @ 2024 Author

परिवार का संवहन, संचालन व निर्देशन स्त्रियाँ करती है। बहु–विवाह प्रथा के दोष में भी प्रथमपत्नी को ''बड़ी'' और दूसरी को ''लोड़ी'' याने छोटी माना जाता है धार्मिक कार्यों में ''बड़ी'' की प्रधानतास्वीकृत है घर के आचार–विचार और नियमों का परिवहन नारी करती है तिलक, आरती, ग्रन्थि–बन्धनआदि मंगलमयी जीवन भूमिका की नायिका आज भी राजपूताना में स्त्रियाँ ही है। समाज को सांस्कृतिकविभूति प्रदान करने में नारी का ही स्थान अग्रणी है, अन्यथा कई परम्पराएँ अलिखित होने से विस्मृत होजातीं। उनके कई कंठस्थ गीत व कथाएँ अधिकांश शास्त्रसंगत आचारों और विधानों को अधिष्ठित कियेहुए है।

राजपूताना में नारी की विशेषता का परीक्षण उस समय हुआ था जब चित्तौड़, रणथम्भौर, जालौरआदि की दीवारें टुकड़े–टुकड़े हो रही थीं और सम्पूर्ण पारिवारिक और राष्ट्रीय जीवन तहस–नजहस होरहा था, यहाँ तक कि नैतिकता का आधार खिसकने की अवस्था पर पहुँचने को था। कर्मावती, पद्मिनीऔर उनकी लाखो ं सहयोगी महिलाओं ने जौहर व्रत के द्वारा अपने प्राणों की बाजी लगा कर देश कीनैतिकता को तथा पारिवारिक गौरव की मर्यादा को नष्ट होने से बचाया। कई बार राजपूतानी महिलाओंने अपने आपको अग्नि के हवाले कर या मृत्यु के मुख में दे साहसी वीरों को निःशंक हो, शत्रुदल परटूट पड़ने की प्रेरणा दी। राजपूताना में ऐसे अवसरों की कमी नहीं है जब माँग, सिन्दूर, चूड़ी, नूपुर औरबिन्दी के श्रृंगार–प्रसाधनों के साथ अनेक रमणियों ने हँसते–हँसते बलि देकर अपने सौन्दर्य कोवास्तविक एवं मंगलमय रूप दिया।

जहाँ मातृ और धातृ सेवा का प्रश्न है, आज भी पन्ना धायाका नाम जीवित है जिसने अपने प्यारेबच्चे की हत्या के गम को गवारा कर राज्य के भावी स्वामी उदयसिंह की रक्षा की। इसी प्रकार महाराणाराजसिंह की माता ने अपने रनिवास की असंख्य स्त्रियों द्वारा श्रीनाथजी की मूर्ति को मेवाड़ में सुरक्षितरखने का आश्वासन दिया, इसीलिए कई प्राचीन चित्रों20 में राजसिंह और उनकी माता का चित्रण एकपरम भक्त की तरह मिलता है मीरा का नाम एक भक्ति–परायणा नारी के रूप में कौन नहीं जानता जोहमारी संस्कृति का सौन्दर्य और राजपूताना के स्त्री समाज का भूषण है।

अतएव सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत आने वाले विषय, जिनमें संस्कार, पर्व, त्यौहार तथापरिवार की जो समीक्षा की गई है, केवल धर्म और आस्था से ही अनुबन्धित नहीं है, वरन् इसकी परिधिमें राजस्थन की सम्पूर्ण जीवन की व्याख्या निहित है कोई भी पर्व या उत्सव क्यों न हो, उसको धार्मिकअनुष्ठान के साथ ऐसा पिरोया गया है कि उसमें ऋतु के गुण और सामाजिक तत्त्व एकरस हो गये है। येविभिन्न संस्थाए राजपूताना की संस्कृति की अखण्डता, विशुद्धता तथा अविच्छिन्नता को स्थिर रखते हुएलोगों को आनन्दमय चेतना और स्फूर्तिमान जीवन प्रदान करती है। त्यौहार पारिवारिक जीवन की आधाशिला है जो जन–जीवन की कड़ियों को मजबूत बनाये रहती है और एकता तथा संगठन कीभावनाओं को बल प्रदान करती है। जीवन में मधुरता का संचार करने में उत्सवों का बड़ा योग रहा हैऐसे अवसरों पर पूजन के लिए जुटाई जाने वाली सामग्री अमृत का, मधुर ध्वनि से गाये जाने वाले गीतमंत्र का तथा वाद्यों पर नाचने वाले नृत्य प्रेरणा का काम करते है। स्त्री–पुरूषों के उल्लास का यदि चित्रहम देखना चाहै तो इन विभिन्न संस्थाओं में मिल सकता है जब नारी की प्रधानता में जीवन का समूचानाटक इन संस्थाओं के माध्यम से खेला जाये। कृषि–प्रधान राजपूताना के परिश्रान्त मानव समूह कामुखरित रूप और शौर्य का वास्तविक चेहरा इन संस्थाओं की आत्मा में प्रतिबिम्बित होता है, जबकिअन्यत्र इनकी अब छाया मात्र अवशेष रह गई है।

सन्दर्भ सूची :

1. चन्द्रावती, लखन पाल : राजपूताना में स्त्रियों की स्थिति, 1999
2. वोल्सटन, मैरी क्राफ्टय : स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन, 2003
3. जैन, अरविंद मंडलोई, लीलाधर : स्त्री मुक्ति का सपना, 2004
4. खंडेला, मान चंद : महिला सशक्तिकरण, 2008
5. डॉ. मालती, के. : स्त्री विमर्श भारतीय परिप्रेक्ष्य 2009
6. गुप्ता, सरोज कुमार : भारतीय नारी कल आज और कल, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012
7. अम्बेडकर, बी.आर. : अनुवादक शीलप्रिय बौद्ध, हिन्दू नारी का उत्थान और पतन, सम्यक प्रकाशन, 2013
8. शिन्दे, ताराबाई, पालेकर, जुई (अनुवादक) : स्त्री–पुरूष तुलना, संवाद प्रकाशन, मुम्बई मेरठ, 2015
9. सिंह, वी.एन. व सिंह, जन्मेजय : नारीवाद रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2018
10. चमड़िया, सपना : स्त्री और धर्म, स्त्री की दुनिया, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019

 Copyright @ 2024 Author